Poonam Shodh Rachna(ISSN 2456-5563)
(A Multidisciplinary, Peer Reviewed and Refereed Research Journal)
Vol. 3, Issue.V, May 2024, PSR-2405035

देवी भागवत महापुराण के आधार पर शक्ति की उपासना, प्रेम और भक्ति–स्वरूप

अनन्त कुमार पाण्डेय, शोधार्थी, संस्कृत विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
ग्राम+डाकघर+थाना–सरबहदा
भाया–अतरी, जिला–गया,पिन–823311

भक्ति का तत्त्व– *परमात्मा की प्राप्ति के तीन साधन बतलाये गये हैं– ज्ञान, भक्ति और कर्म। पुराणों में तीनों तत्त्वों का निवेश है, किन्तु भक्ति को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। ज्ञान के लिए तपःसाधना कठिन है, कर्ममार्ग भी सर्वजनगम्य नहीं है। भक्ति ऐसा मार्ग है, जो सर्वजन सुलभ है, सरल है, प्रशस्त है, सरस है। शिव को प्राप्त करने के लिए पार्वती ने घोर तप किया। शरीर को तपायन और मन को शिव में निविष्ट रखा। पार्वती अपनी तपस्या से भक्तवत्सल शिव को प्रसन्न करना चाहती है।*

तं तोषयामि तपसा शंकरं भक्त्वत्सलम्

पार्वती ने कठोर तप किया, तब परीक्षा लेने के लिए ब्रह्मचारी वेशधारी भगवान् शंकर स्वयं आये। उन्होंने व्याजस्तुति मार्ग से पार्वती की परीक्षा ली। पार्वती का अपने प्रति (शिव के प्रति) अखण्ड एवं एकनिष्ठ प्रेम देखकर शिव प्रसन्न हो गये और पार्वती के दास बन गए। इस प्रसंग से स्पष्ट पता चलता है कि तपःसाधना से भगवततत्त्व की प्राप्ति हो सकती है।

भक्ति भगवान को बहुत प्रिय है। वेद में स्त्री एवं शूद्र का अधिकार नहीं था, किन्तु भक्तिमार्ग सबके लिए सुलभ था। शिवपुराण में महानन्दा नामक भक्त वेश्या का आख्यान इसका उदाहरण है। महानन्दा वेश्या रूपजीवा थी। भगवान् शंकर में उसकी एकनिष्ठ भक्ति थी। वह एक वानर एवं एक मुर्गे को नचाया करती थी, उस नृत्य से शंकर को प्रसन्न करती थी तथा सखियों के साथ स्वयं भी प्रसन्न होती थी। उसकी भक्ति की परीक्षा लेने भगवान शंकर वैश्य के रुप में आये। वैश्य के हाथ में एक कंगन था। कंगन देख कर वैश्या को लोभ हो गया। वैश्य ने वैश्या को कंगन तो दे दिया। लेकिन तीन रात तक पत्नी बनकर रहने की शर्त करवा ली। वैश्य ने उसे एक रत्ननिर्मित शिवलिंग दिया और यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करने के लिए वैश्या को कहा। वैश्या के घर में अग्निदाह हुआ, वह शिवलिंग भस्मीभूत हो गया। शिवलिंग के शोक में वैश्य ने प्राण त्यागने के लिए चिता रचायी। वैश्या भी उसी चिता पर आरुढ़ हुई, पत्नी धर्म–निर्वाह के लिए, क्योंकि उसने तीन रात तक पत्नीवत् रहने की शर्त स्वीकार कर चुकी थी। उसकी शिवभक्ति एवं धर्मप्रियता से भगवान शंकर प्रसन्न हो गये और वेश्या को चिता में जलने से रोक लिया। अन्त में वैश्या को देवदुर्लभ लोक (सद्गति) प्रदान किया।

सगुणोपासक मोक्ष नहीं चाहते। अतएव वेश ने कहा

न मे वाञ्छास्ति भोगेषु
भूमो स्वर्गे रसातले।
तव पादाम्बुस्पर्शा–
दन्यत्किञ्चन्न कामये।।

यह तो भक्ति की पराकाष्ठा है। भक्त तो उपासक के चरणकमलों की सेवा करना चाहता है। स्वर्गप्राप्ति या मोक्षलाभ से चरणसेवा का आनन्द नहीं मिल सकता।

इस दृष्टान्त से स्पष्ट है कि शिवपुराण ने भक्ति को परमात्मतत्त्व की प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन माना है। शिवपुराण ने भक्तिमार्ग में समाज के उपेक्षित, निंद्य पात्र को भी अधिकार प्रदान किया है।

राजा भद्रायु भगवान शंकर का अनन्य भक्त था। एक बार वह सपत्नीक वन में विहार करने निकला। उसी समय शिव ने उसकी भक्ति एवं कर्तव्य परायणता की परीक्षा लेनी चाहिए। शिव और पार्वती ने ब्राह्मण–ब्राह्मणी का रुप बनाया। उस वन में राजा के समीप ही घूमने–फिरने लगे। तभी शिव की माया से निर्मित सिंह ब्राह्मण–ब्राह्मणी के सामने प्रकट हुआ और उन्हें खाने की चेष्टा करने लगा। ब्राह्मण–ब्राह्मणी अपनी रक्षा के लिए राजा की गुहार लगाने लगे। तभी सिंह ब्राह्मणी को ले भागा, राजा का कोई पराक्रम काम नहीं आया। उसके सारे प्रयास विफल हो गये। तब ब्राह्मण को सान्तवना देने एवं संतुष्ट करने के लिए राजा ने अनेक वस्तुओं, धैनश्वर्य

का प्रलोभन दिया। ब्राह्मण ने रानी को दान करके उस ब्राह्मण को देने का प्रस्ताव दिया। सोच–विचार कर राजा यह भी करने को सहमत हो गया। स्नानादि से निवृत्त होकर राजा ने शंकर का ध्यान किया और अपनी रानी ब्राह्मण को दान देने के लिए बैठ गया। तभी भगवान् शंकर विग्रह रुप में प्रकट हुए और राजा को ऐसा करने से रोका।

अपनी भक्ति–भावना के फलस्वरूप ही राजा ने शंकर के दिव्यरुप का दर्शन पाया। भगवान् के कहने पर राजा भद्रायु ने एक ही वर माँगा कि मैं अपने माता–पिता और पत्नी सहित आपके चरणों का सेवक बना रहा हूँ। मुझे अपनी शरण में ले लीजिये। भगवान ने एवमस्तु कहकर स्वीकार किया।

यद्ददासि पुनर्नाथ। वरं स्वकृपया प्रभो।
वृणेऽहं परमं व्यक्तो वरं हि वरदर्षभात्।।
वज्रबाहुः पिता मे हि सत्पनीको महेश्वर।
सपत्नीकस्त्वहं नाथः सदा त्वत्पादसेवकः।।
वैश्यः पद्माकरो नाम तत्पुत्रः सन्वयानिधः
सर्वानितान्तमहेशान! सदा त्वं पार्श्वगान्कुरु।।

यहाँ राजा भद्रायु ने एक सच्चे भक्त की तरह वर माँगा। भक्त कभी मुक्ति नहीं चाहता, वह तो सतत् आराध्य के श्रीचरणों की सेवा करना चाहता है। यहाँ तो राजा माता–पिता–पत्नी और समाज के न्य वैश्य पद्माकर के साथ भक्ति में रत रहने का वर माँगा। यह राजा की सदाशयता है, उदारता है, सर्वहित का व्यापाक दृष्टिकोण है।

इन दोनों दृष्टान्तों के माध्यक से शिवपुराण यह बलताना चाहता है कि भक्तिमार्ग सर्वश्रेष्ठ है। इसके माध्यम से हर व्यक्ति परमात्मदर्शन कर सकता है, आत्मिक आनन्द प्राप्त कर सकता है। इस भक्तितत्त्व से बढ़कर अन्य कोई साधन नही है। भगवान् शंकर आशुतोष हैं। इनके प्रति भक्ति रखने से शीघ्र ही मनोरथ की पूर्ति होती है। अतएव हम स्वयं शिव के चरणों की सेवा करें और दूसरों को भी इसके लिए उत्प्रेरित करें, जिससे जनकल्याण हो सके। यह भक्ति आराध्य के प्रति एकनिष्ठ होनी चाहिए। विषम परिस्थिति उपस्थित होने पर भी भक्त को अपने कर्तव्य मार्ग से कदापि विचलित नहीं होना चाहिए।

देवी भागवत में मुक्ति–प्राप्ति के तीन साधन कहे गये हैं–कर्म, ज्ञान और भक्तियोग। इन तीनों में भक्तियोग ही सहज में सिद्ध होता है। गुण भेद से यह भक्ति भी सांख्यिकी, राजसी और तामसी तीन प्रकार की है। दूसरे को पीड़ा देने के निमित्त मात्सर्य क्रोधादिभाव से की गयी उपासनी तामसी भक्ति के सकाम भाव से लालुपता होकर की गयी भक्ति राजसी हो और भगवान् की प्रसन्नता के लिए की गयी आराधना, उपासना सात्विकी भक्ति है, जो व्यक्ति सदा आराध्य की पूजा, अर्चना, कीर्तन करता है, जिसका मन परमात्मा में ही लगा रहता है, जो यह सब करते हुए मोक्ष की भी आशंका नहीं करते परानुरक्तिपूर्वक जो आराध्य की ही उपासना करता है, आकांक्षा करता है, उसकी भक्ति पराभक्ति कहलाती है। पराभक्ति में लीन व्यक्ति शीघ्र ही चिद्रूप में लीन हो जाता है।

जिस ज्ञान से भक्ति और ज्ञान की पूर्णता होती है इस कारण वैराग्य और भक्ति पराकष्टा का ही नाम ज्ञान है, ज्ञान में यह दोनों ही है। जो भक्ति करके भी प्रारब्ध परमात्मा के ज्ञान के अधिकारी नहीं हो, वे मणिद्वीप में गमन करते हैं। वहाँ अनिश्चित रूप से भी सभी भोगों की प्राप्ति होती है, उसके भक्त में चिद्रूप लाभ करके उस ज्ञान से मुक्त हो जाता है। कारण यह है कि ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती है। यहाँ जिसको संवित स्वरूप हृदय में प्राप्त प्रत्यगात्मा का ज्ञान होता है। मणिद्वीप में द्वैतभावर्जित ज्ञान होता है। जो वैराग्यवान् होकर पूर्णज्ञान प्राप्त किये बिना प्राण त्याग करते हैं वह प्रलयपर्यन्त ब्रह्मलोक में निवास कर के फिर पवित्र श्रीमान् पुरुषों के घर जन्म ग्रहण कर साधना करके फिर ज्ञान प्राप्त करते हैं और यही चक्र चलता रहता है। ज्ञान एक जन्म में ही प्राप्त हो जाय ऐसा निश्चित नहीं। यह अगले जन्म में ही संभव होता है। मनुष्य जन्म बड़ा दुर्लभ है। अतएव मनुष्य जन्म पाकर उसमें ज्ञानप्राप्ति के लिए अवश्यक ही यत्न करना चाहिए।

नवम स्कन्ध में भी कहा गया है कि भक्ति प्राणियों के कर्मबन्धन का नाश करनेवाली है। यही सभी प्रकार की सिद्धियों का कारण भी है।

कारणं सर्वसिद्धीनां नरकार्णवतारणम्
भक्तिवृक्षं कुरकुरं कर्मवृक्षनिकृन्तनम्

देवी की भक्ति में लीन व्यक्ति कभी नरक–कुण्ड में नहीं गिरता, जो देवी की भक्ति नहीं करते वे ही धर्मराज स्थान में या यम की संयमनी पुरी में जाते हैं। देवीमंत्र के उपासकों को भगवती का नाम ही कर्मबन्धन से मुक्त करता है। धर्मकार्य में निरत आचारवाले मर्त्यलोक में जाते हैं तो उनमें यमदूत का दर्शन भी नहीं होता।

देवीभक्तिविहिना ये ते पश्यन्ति ममालयम्
यान्ति ये हरितीर्थं क श्रयन्ति हरिवासरान।।
प्रणमन्ति हरिं नित्यं हर्यर्चां कलयन्तिच।
न यान्ति तेऽपि घोरां च मम संयमनीं पुरीम्।।
देवीमंत्रोपासकानां नाम्नां चैव निकृन्तनम्।
करोति नखलेखया चित्रगुप्तश्च भीतवत्।।

यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि इस पंचभूतात्मक शरीर के विनष्ट हो जाने पर अर्थात् प्राणी के मर जाने पर यह शरीर पापों का या पुण्यों का फल कैसे भोगता है? उत्तर है– यह पंचभूतात्मक शरीर कृत्रिम और नश्वर है, यह यहाँ ही भस्म होता है, परन्तु

पुरुषाकृतिजीव अंगुष्ठ मात्र प्रमाण शरीरवाला कर्म से बँधा होता है। यह सूक्ष्म शरीर सुख–दुःख का भोक्ता होता है। वह देह अग्नि में भस्म नहीं होता, न जलप्रवाह में नष्ट होता है।

निष्कर्षतः भगवत् प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन भक्ति है। इस मार्ग पर चलकर व्यक्ति आसानी से उपास्य को प्रसन्न कर सकता है और अन्त में उसके पुण्यलोक के प्राप्त कर सकता हे।

सुख–दुःख का भोक्ता वह सूक्ष्म शरीर है, जो अनश्वर है, न कि यह पंचभूतात्मक पार्थिव शरीर।

शक्ति आराध्या है। इसकी पूजा–अर्चना, उपासना–आराधना से ही मनोरथ सिद्धि होती है। सगुण–साकार भगवती की पूजा भौतिक उपचारों से होती है तथा निर्गुण रुप की उपासना या साधना ज्ञानयोग के द्वारा होती है। देवी भागवत में दोनों की विधियाँ बतलायी गयी हैं। देवी के पूजा–अनुष्ठान के लिए समुचित समय और स्थान भी निर्दिष्ट हैं। इन समयों पर समुचित रुप से किया गया अनुष्ठान फलदायी होता है केवल बाह्य उपचार, स्थान और समय के औचित्य से ही सिद्धि मिलती, अपितु उसमें श्रद्धा, भक्ति भी अनिवार्य होती है।

शक्ति उपासना के लिए पवित्र काल एवं प्रसाद– देवी के अनुष्ठान के लिए शरद् ऋतु और वसन्त ऋतु के नवरात्र को उत्तम समय बतलाया गया है। इन ऋतुओं में किया गया पूजन मनुष्य को आरोग्य, सुख–समृद्धि प्रदान करता है। इन ऋतुओं को 'यमद्रंष्ट्र' कहा गया है। इसमें अनेक प्रकार के रोग बढ़ते हैं, जिनसे मनुष्य पीड़ित होते हैं। अतएव चैत्र (वसंत) और आश्विन (शरद्) में विधिपूर्वक एवं श्रद्धाभक्ति से युक्त होकर भगवती का पूजन करना चाहिए।

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि नवरात्रव्रतं शुभम्।
शरकाले विशेषण कर्तव्यं विधिपूर्वकम्।।
वसन्ते च प्रकर्तव्यं तथैव प्रेमपूर्वकम्।
द्वावृतू यमदंष्ट्राख्यौ नूनं सर्वजनेषु वै।
शरद्वसन्त नामानौ दुर्गमौ प्राणिनामिह।
तस्माद्यत्नादिदं कार्यं सर्वत्र शुभमिच्छता।।
द्वावेव सुमहाघोरा वृत्त रोगकरो नृणाम्
वसन्तशरादेव जननाशकरावुभौ।।
तस्मातंत्र प्रकर्तव्यं चण्डिकापूजनं बुधैः।
चैत्रेऽश्विने शुभे मासे भक्तिपूर्ण नराधिपः।।

माघ और आषाढ़ के नवरात्र को गुप्त नवरात्र बताया गया है। ये दोनों नवरात्र भी भगवती क पूजा–अनुष्ठान के लिए प्रशस्त बतलाये गये हैं। भगवती के पृथक–पृथक् स्वरूप के लिए अलग–अलग समय उपयुक्त कहे गये हैं। दुर्गापूजन के लिए नवरात्र का समय अच्छा कहा गया है–

नवरात्रे पठेदेतद्वेव्यग्रे तु समाहितः।
परितुष्टा जगद्धात्री भवत्येव हि निश्चितम्।।

दुर्गा शैवी कही जाती है। यह सबकी बुद्धि अधिष्ठात्री देवी अन्तर्यामी स्वरूपिणी, भयंकर संकट को दूर करने वाली दुर्गा नाम से विख्यात है। इसका पवित्र मंत्र नवाक्षर है– ऊँ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।' इसकी पूजा प्रारम्भ करने के पूर्व विनियोग एवं अंगन्यास करना चाहिए। इसका ध्यान है–

खड्गचक्रगदाबाण चापानि परिघं तथा।
शूलं भुशुण्डीं च शिरः शंखं संदधतीं करैः।।
महाकालीं त्रिनयनां नानाभूषणभूषितान।
नीलांजनसमप्रख्यां दशपादननां भजे।।
मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टवांबुजासनः।
एवं ध्यायेन्महाकालीं कामबीजस्वरूपिणीम्।।
अक्षमालां च परशुं गदेषु कुलिशानि च।
पद्मं धनुष्कुण्डिकां च दण्डं शक्मिसिं तथा।।
चर्माम्बुजं तथा घण्टां सुरापात्रं च शूलकम्।
पाशं सुदर्शनं चैव दधतीमरूणप्रभाम्।।
रक्ताम्बुजासनगतां मायाबीजस्वरूपिणीम्।
महालक्ष्मीं भजेदेवं महिषासुरमर्दिनीम्।।
घण्टाशूले हलं शंखं मुसलं च सुदर्शनम्।
धनुर्बाणान्हस्तपद्मैर्दधानां कुन्दसन्निभाम्।।
शुम्भादि दैत्यंसहत्री वाणी बीजस्वरूपिणीम्।
महासरस्वतीं ध्यायेत्सच्चिदानन्द विग्रहाम्।।

महासरस्वती के पूजन का विधान इसी नवम् स्कन्ध में बतलाया गया है। माघ मास के शुक्लपक्ष की पंचमी तिथि सरस्वती–पूजन के लिए उपयुक्त कहा गया है। कलश पर अथवा पुस्तक पर देवी का आह्वान करना चाहिए। फिर षोडशोपचार से पूजा करनी चाहिए।

माघमासस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भे च सुन्दरि।।

सबसे पहले कलशस्थापन करना चाहिए। उस पर सरस्वती का आवाहन करना चाहिए। वेदोक्त या तन्त्रोक्त विधि से पोडशोपचार से पूजन करना चाहिए। नवनीत, दही, खीर, लावा, तिल निर्मित लड्डू, गन्ना, गन्ना का रस, गुड़, मधु, श्वेतधान्य के अक्षत, श्वेतमोद (कसार) घी–सैंधवयुक्त अन्न, घी में भुना हुआ गेहूँ का आटा, केला, मिष्टान, नारियल, नारियल का पानी, मूली, अदरख, अच्छा श्रीफल बदरीफल (बेर) और समसामयिक ऋतुफल अर्पित करना चाहिए। 'श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा' इस मंत्र से प्रसाद अर्पण एवं हवन की आहुति देनी चाहिए। सरस्वती का यह अष्टाक्षर मंत्र प्रमाणिक है, ऋषि–स्वीकृत है। सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण के समय गुरु द्वारा प्रदत्त वह मंत्र विशेष लाभकारी होता है। प्राचीन काल से ही यह मंत्र प्रचलित है। करुणाकर नारायण ने गंगातट पर वाल्मीकि को यह मन्त्र दिया। फिर भृगु ने सूर्यगहणकाल में शुक्राचार्य को, मरीचि ने चन्द्रहणकाल में बृहस्पति को; बदरिकाश्रम में ब्रह्मा ने भृगु को जरत्कारू ने आस्तिक को, विभाण्डक ने ऋष्यश्रृंग को, शिव ने कणाद और गौतम को, सूर्य ने याज्ञवल्क्य और कात्यायन को, अनन्तदेव ने पाताललोक में बलि की सभा में भरद्वाज और शाकटायन को यह मंत्र दिया था। इस मंत्र का पुरचरण चार लाख बतलाया गया है।

यहाँ अमोघ सरस्वती कवच भी दिया गया है। इसका पाठ करने एवं लिखकर गुटिका रुप में धारण करने पर मनुष्य की बुद्धि तेज होती है। कवच इस प्रकार है–

विनियोग–कवचस्यास्य विप्रेन्द ऋषिरेव प्रजापतिः। स्वयं छन्दश्च बृहती देवता। शारदाम्बिका सर्वतत्त्वपरिज्ञानसवार्थसाधनेषु कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः।

कवच–

श्रीसरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः।
श्रीवाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदाऽवतु।।
ऊँ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रे पातु निरन्तरम्।
श्रीं ह्रीं भगवत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदाऽवतु।।
ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां में सर्वदाऽवतु।
ह्रीं विद्याधिषतृदेव्यै स्वाहा चोष्ठं सदाऽवतु।।
ऊँ श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धौ मे श्रीं सदाऽवतु।
ऊँ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवेतु।।
ऊँ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम हस्तौ सदाऽवतु।।
ऊँ सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदाऽवतु।
ऊँ ह्रीं वागाधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा मां सर्वदाऽवतु।।
ऊँ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदाऽवतु।
ऊँ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाऽग्निदिशि रक्षतु।।
ऊँ ऐं ह्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा।
सततं मंत्र राजोऽयं दक्षिणे मां सदाऽवतु।।
ऐं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरोमन्त्रो नैऋत्यां सदाऽवतु।
ऊँ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु।।
ऊँ सर्वाम्बिकायै स्वाहा वायव्ये मां सदाऽवतु।
ऊँ श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा मामुत्तरेऽवतु।।
ऐं सर्वशास्त्रावासिन्यै स्वाहैशान्यां सदाऽवतु।
ऊँ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वं सदाऽवतु।।
ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाऽधो मां सदाऽवतु।
ऊँ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा सर्वतोऽवतु।।

यह कवच सरस्वती शक्ति की सिद्धि एवं आत्मरक्षा के लिए बहुत उपादेय है। इस कवच के पाठ से साधक की बुद्धि प्रखर होती है, उसकी प्रज्ञा और मेधा शक्ति भी तीव्र होती है।

यथा पूर्वोल्लिखित है, महाशक्ति एक ही है। समय–समय पर एवं आवश्यकतानुसार उसी ने स्वयं को विविध रुपों में उत्पन्न किया। उसका एक रुप है मनसा देवी। यह भगवती ऋषि कश्यप की मानसी कन्या है। मनसा ने दीर्घकाल तक शिव की आराधना की। शिव से वरदान पाने के कारण यह शैवी है। जनमेजय के यज्ञ में इसने नागों की रक्षा की थी। इसलिए इसका नाम नागेश्वरी भी है। इसे विषहरा भी कहा जाता है।

आषाढ़ मास की संक्रान्ति या श्रावणमास नागपंचमी को इनकी पूजा के लिए उपयुक्त समय है। ऐसे समय में पूजा करने से मनसा देवी प्रसन्न होती है। पूजक के पुत्र, पौत्र, धनादि की वृद्धि होती है। वह व्यक्ति कीर्तिमान एवं विद्यावान् होता है। उसे कभी सर्प का भय नहीं होगा।

मनसा स्तोत्र का पुरश्चरण पाँच लाख है। अर्थात् पाँच लाख बार इस स्रोत का पाठ करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

एकादश स्कन्ध में देवी की पूजा का विशेष विधान बतलाया गया है। मन एकाग्र करके आसन पर बैठें। मातृका–न्यास और षड्–अंगन्यास करें। शंख स्थापित कर 'फट्' का उच्चारण करते हुए पूजाद्रव्य का जल से प्रोक्षण करें। गुरु की आज्ञा से पूजन प्रारम्भ करें। पीठ की पूजाकर, द्राक्षारस से देवी को स्नान करावें। अगर, केसर, कर्पूरजल से भी स्नान कराना श्रेयष्कर होता है। दूध, दही, मधु, घी से स्नान करवाना अधिक लाभप्रद होता है। केसर, चन्दन, कस्तूरी, बिन्दी, सिन्दूर, महावर जैसे प्रसाधनों से देवी का श्रृंगार करें। बिल्वपत्र, रक्त, चन्दन, कुन्दपुष्प, अष्टागन्ध जैसे सुगन्धित पदार्थ से देवी के विग्रह को सुवासित करें। जूही, बन्धूक, दाडिम का फूल भी भक्तिभावसे अर्पित करें। दीपक और कर्पूर जलाकर देवी–स्थल को प्रकाशित करें। स्वादिष्ट फल, मिष्टान्नादि की प्रचुर मात्रा देवी को नैवेद्य स्वरूप अर्पित करें। छत्र, चँवर भी देवी को प्रदान करें। फिर स्त्रोत पाठ से देवी की स्तुति करें। इस प्रकार पूजन करने से भगवती बहुत प्रसन्न होती है और साधक को अभीष्ट फल प्रदान करती है।

देवी की उपासना के लिए व्रतों का विधान किया गया है, यथा अनन्त तृतीयाव्रत, रसकल्याणिनीव्रत, आर्द्रानन्दकर व्रत–ये व्रत तृतीया तिथि को लिये जाते हैं। शुक्रवारव्रत, कृष्ण चतुर्दशीव्रत, मंगलवारव्रत, प्रदोषव्रत, सोमवार का व्रत भी भगवती को विशेष प्रिय है। देवी की प्रतिमा सुशोभित आसन पर स्थापित करके प्रीतिपूर्वक पूजन करना चाहिए। भगवती के समक्ष स्त्रोतपाठ, नृत्य–गीत, संकीर्तन करना चाहिए। भगवती ने कहा कि आश्विन और चैत्र (शरत् और वसन्त) नवरात्र का व्रत मुझे विशेष प्रिय है। दिन में देवी का पूजन स्तुति करें और रात्रि में भोजन करें। यह नवरात्रव्रत का नियम है। देवी के लिए दोलोत्सव, शयनोत्सव और जागरणोत्सव भी करना श्रेष्यकर होता है। चैत्र और श्रावणपूर्णिमा देवी की उपासना के लिए उपयुक्त समय है। सुवासिनी कुमारी और बटुक का पूजन भी करना चाहिए। यह भी देवी–पूजन का ही एक अंग है। जो व्यक्ति उपर्युक्त दिन एवं तिथियों को विधि–विधान से श्रद्धाभक्तिपूर्वक देवी का पूजन करता है, उसे भगवती अभीष्ट फल प्रदान करती है। वह व्यक्ति धन्य एवं कृतकृत्य हो भगवती का प्रेम–पात्र बनता है।

नारीभिश्च नरैश्चैव कर्तव्यानि प्रयत्नतः।
व्रतमनन्ततृतीयाख्यं रसकल्याणिनीव्रतम्।।
आर्द्रानन्दकरं नाम्ना तृतीया या व्रतं च यत्।
शुक्रवारव्रतं चैव तथा कृष्ण चतुर्दशी।।
भौमवारव्रतं चैव प्रदोषव्रतमेव च।
यत्र देवो महादेवो देवीं संस्थाप्य विष्टरे।।
नृत्यं करोति पुरतः सार्धं देवैर्निशामुखे।
तत्रोपोष्य रजन्यादौ प्रदोषे पूजयेच्छिवाम्।।
प्रतिपक्षे विशेषण तद्देवीप्रीतिकारकम्।
सोमवारव्रतं चैव ममातिप्रिय वृन्नग।।
तत्रापि देवीं संपूज्य रात्रौ भोजनमाचरेत्।
नवरात्रद्वयं चैव व्रतं प्रीतिकरं मम।।
एवमन्यान्यापि विभो नित्यनैमित्तिकानि च।
व्रतानि कुरुते यो वै मत्प्रीत्यर्थं विमत्सरः।।
प्राप्नोति मम सायुज्यं स मे भक्त् स मे प्रियः।
उत्सवानपि कुर्वीत दोलोत्सवमुखान्बिभो।।
शयनोत्सवं कथा कुर्यात्तथा जागरणोत्सम्।
रथोत्सवं च मे कुर्याद्दमनोत्सवमेव च।।
पवित्रोत्सवमेवापि श्रावणे प्रीतिकारकम्।
मम भक्तः सदा कुर्यादेवमन्यान्महोत्सवान्।।
मद्भक्तन्भोजयेत् प्रीत्यर्थं तथा चैव सुवासिनीः।
कुमारी र्वटुकांश्चापि मद्बुद्ध्या तद्गतान्तरः।।

देवी के पूजन के लिए दोनों विधियाँ उत्तम हैं–वैदिकी और यांत्रिकी। वैदिक मंत्रों से दीक्षित व्यक्ति को वैदिक रीति से अर्थात् वैदिक मंत्रों से पूजा–आराधना करनी चाहिए। वैदिक पूजा भी दो प्रकार की कही गयी है' विराट रुप से देवी का ध्यान करना–यह पहली विधि है और कर–चरणादियुक्त देवी की मूर्ति का ध्यान कर वैदिक मंत्रों से आवाहन, पूजन एवं विसर्जन यह दूसरी वैदिक विधि है। तन्त्रमार्ग में दीक्षित व्यक्ति को तन्त्रोक्त विधि से पूजा करनी चाहिए।